IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आधुनिक भारतीय चित्रकला की विविध प्रवृत्तियाँ एवं प्रभाववाद

अनु देवी, शोध छात्रा, चौ0चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ व प्रवक्ता, ललित कला विभाग, श्रीराम कॉलेज, मुजफ्फरनगर।

डॉ0 वन्दना वर्मा, शोध निर्देशक व एसोसिएट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग, जैन कन्या (पी0जी0) कॉलेज, मुजफ्फरनगर

संक्षेप

आधुनिक भारतीय चित्रकला पर साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी नीतियों का विशेष प्रभाव देखने को मिलता है। ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ ही, प्रचलित परम्परागत कला–शैलियों के अवसान के साथ आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास जुड़ा हुआ है। जैसे–जैसे भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव बढ़ता गया और हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों को पदच्युत करके अनेक राज्यों का शासन सीधे ब्रिटिश सत्ता के अधीन होता गया, वैसे–वैसे राजाश्रय में पलने वाले चित्रकार भी अपने आश्रयदाताओं के दरबारों से पलायन करते गये। भारत में कुछ पश्चिमी चित्रकार मुख्यतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी अथवा ब्रिटिश शासन के अधिकारियों के साथ आये कुछ अन्य चित्रकार भारत की समृद्धि की ख्याति सुनकर विदेशी व्यापारियों की भाँति भारत में अपना भाग्य आजमाने आ गये। भारतीय संरक्षकों ने अपनी परम्परागत कला–शैलियों का तिरस्कार करते हुए इन पश्चिमी चित्रकारों को अप्रत्याशित प्रोत्साहन दिया। किन्तु राजाश्रय से भिन्न यहाँ के लोक–जीवन में कलाओं का जो अनिवार्य प्रयोग होता रहा है, उसकी धारा इस युग में भी अविच्छिन्न बहती रही और उसके सौन्दर्य को कलाकारों की नई पीढ़ियों ने केवल तभी पहचाना जब यूरोप के कला–मर्मज्ञों ने आदिम कला तथा लोक कला की शक्ति की भूरि–भूरि प्रशन्सा की। भारतीय लोक–कलाओं का प्रभाव आज हम देश के मूर्धन्य कलाकारों पर देखते हैं।

मुख्य शब्दः भारतीय चित्रकला, विस्तारवाद, प्रभाववाद, प्रवृत्तियाँ।

आधुनिक भारतीय चित्रकला की पृष्ठभूमि

आधुनिक भारतीय चित्रकला की प्रवृत्तियाँ वर्तमान समय की चित्रकला में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है जबकि इसका इतिहास एक उलझनपूर्ण किन्तु विकासशील कला का इतिहास है। साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी नीतियों का विशेष प्रभाव इस कला पर देखने का मिलता है। बर्बर ओर लालची विदेशी शक्तियों ने इसे बार–बार आक्रान्त किया; अतः एक स्वतन्त्र–चेता राष्ट्र के रूप में इस देश की विचारधारा, कला एवं संस्कृति का विकास अपेक्षित दिशा में नहीं हो सका।

ब्रिटिश सत्ता के भारत से चले जाने के उपरान्त भी देश की कला का विकास उचित रीति से नहीं हो पा रहा है एवं न हम अपनी परम्पराओं और अतीत को ही सहीं ढंग से समझते हैं और न पश्चिमी आन्दोलनों के भारत देश पर पड़ने वाले आवश्यक अथवा अनावश्यक प्रभावों को ही गम्भीरता से सोच पा रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक भारतीय चित्रकला की कोई राष्ट्रीय व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं रहा। अतः यह शोधपत्र आधुनिक भारतीय चित्रकला के प्रभाव को दर्शाने का एक प्रयास है।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के साथ ही, प्रचलित परम्परागत कला–शैलियों के अवसान के साथ आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास जुड़ा हुआ है। जैसे–जैसे भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव बढ़ता गया और हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों को पदच्युत करके अनेक राज्यों का शासन सीधे ब्रिटिश सत्ता के अधीन होता गया, वैसे–वैसे राजाश्रय में पलने वाले चित्रकार भी अपने आश्रयदाताओं के दरबारों से पलायन करते गये। भारत में कुछ पश्चिमी चित्रकार मुख्यतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी अथवा ब्रिटिश शासन के अधिकारियों के साथ आये कुछ अन्य चित्रकार भारत की समृद्धि की ख्याति सुनकर विदेशी व्यापारियों की भाँति भारत में अपना भाग्य आजमाने आ गये। भारतीय संरक्षकों ने अपनी परम्परागत कला–शैलियों का तिरस्कार करते हुए इन पश्चिमी चित्रकारों को अप्रत्याशित प्रोत्साहन दिया। किन्तु राजाश्रय से भिन्न यहाँ के लोक–जीवन में कलाओं का जो अनिवार्य प्रयोग होता रहा है, उसकी धारा इस युग में भी अविच्छिन्न बहती रही और उसके सौन्दर्य को कलाकारों की नई पीढ़ियों ने केवल तभी पहचाना जब यूरोप के कला–मर्मज्ञों ने आदिम कला तथा लोक कला की शक्ति की भूरि–भूरि प्रशन्सा की। भारतीय लोक–कलाओं का प्रभाव आज हम देश के मूर्धन्य कलाकारों पर देखते हैं।

अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप कला के क्षेत्र में दो प्रभाव पड़े, पहला– स्थानीय चित्रकारों ने अपने अनुसार पश्चिमी कला के मिश्रण से एक संकर कला–शैली का निर्माण किया जिसे कम्पनी शैली कहा गया है। दूसरा– यह कि समाज के सभी वर्गों में, जो कलाओं के संरक्षक समझे जाते हैं में पश्चिमी कला के प्रति आदरभाव बढ़ा और अपनी कला के प्रति भावना कम हुई। स्वयं अंग्रेजों ने इस भावना को बढाने तथा पश्चिमी चित्रकारों को भारत में प्रोत्साहित करने का भरपूर प्रयत्न किया। जो भारतीय चित्रकार पश्चिमी शैली में कार्य करते थे, अंग्रेजों ने उन्हें भी अत्यधिक प्रोत्साहन दिया।

चित्रकला की दुर्बलता

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते–आते राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल शैलियों में पर्याप्त ह्रास हो गया था। राजस्थान कला की पहले जैसी स्थिति नहीं रही थी। जयपुर शैली के चित्रों की मांग बढ़ जाने के कारण घटिया स्तर की असंख्य कृतियों का निर्माण होने लगा जिनमें चरबों के आधार पर प्राचीन चित्रों की अनुकृतियों की संख्या बहुत अधिक थी। 1880 तक आते–आते इस शैली पर पर्याप्त यूरोपीय प्रभाव पड़ चुका था।

- पहाड़ी शैली की अन्तिम परिणति सिख चित्रकला में हुई जिसमें पर्याप्त दुर्बलता, आलंकारिकता तथा रेखांकन की कठोरता है। रंगों में भी पहले जैसा सौन्दर्य नहीं रहा। इसके साथ ही इस पर भी पश्चिमी कला का प्रभाव बढ़ता गया।
- मुगल कला में भी पहले जैसी उत्कृष्टता नही रही। आकृतियों में छाया–प्रकाश दिखाने हेतु काले रंग का प्रयोग किया जाने लगा। यूरोपीय कला के प्रभाव से अन्धकारपूर्ण वातावरण में तेज प्रकाश से चमकती आकृतियाँ भी अंकित की जाने लगी। घटिया रंगों का प्रयोग होने लगा और अनेक नकलें तैयार की जाने लगी। आलोचकों ने मुगल शैली के तीन रूप माने हैं दरबारी, लोकप्रिय तथा बाजारू। शक्तिशाली शासकों के अनत के साथ ही दरबारी मुगल कला भी समाप्त हो गयी।
- मुगल कलाकारों की परम्परा की अनुकृति करने वाले अन्य चित्रकारों की कला 'लोकप्रिय मुगल' अथवा प्रान्तीय मुगल–कहलाई और जो दरबारी मुगल कलाकार कही भी आश्रय न मिलने पर बाजार में आ बैठे उनकी कला 'बाजार मुगल' कहलाई। इस प्रकार मुगल कला का स्तर भी बहुत गिर गया था।
- दक्षिण की कला में उन्नीसवी सदी में मुगल तत्वों के साथ–साथ यूरोपीय तत्वों का बहुत अधिक सम्मिश्रण होने से इसमें भी पहले के समान सौन्दर्य नहीं रहा। इस समय तक अनेक विदेशी चित्रकार भी विभिन्न शासकों के दरबारों में आने लगे थे। उनके कारण भारत की परम्परागत शैलियों को बड़ा आघात लगा। उन्नीसवी सदी में भारतवर्ष के कई स्थानों पर कुछ स्थानीय शैलियाँ भी चल रही थीं। इनमें निम्न शैलियाँ प्रमुख थी।

भारतीय चित्रकला की विविध प्रवृत्तियाँ

बंगाल की पटुआ कला तथा कालीघाट की पट चित्रकला– लोककला के दो रूप हैं, एक प्रतिदिन के प्रयोग से सम्बन्धित और दूसरा उत्सवों से सम्बन्धित। पहले रूप में सरलता हैः दूसरे में आलंकारिकता, दिखावा तथा शास्त्रीय नियमों के अनुकरण की प्रवृति दर्शाई जाती है। पटुआ कला प्रथम प्रकार की है और पटुआ कला और कालीघाट की पट चित्रकला भी एक नहीं है, एक जैसी है। जब कलकत्ता शहर बना तो कुछ ग्रामीण शिल्पी कालीघाट में आकर उनकी पद्धति में परिवर्तन होने लगा। उन्हें शहरी लोगों के लिए चित्रांकन करना पड़ा अतः इस नयी विधि में पटुआ कला की मूल भावना लुप्त हो गयी। रूप तो पुराने ढंग पर ही बनाये गये पर विषयवस्तु में परिवर्तन हो गया। इस प्रकार रूप और प्रतिपाद्य की एकसूत्रता समाप्त हो गयी और कला अपने आदर्श से विमुख हो गयी।

विशुद्ध पटुआ कला अत्यन्त प्राचीन है। इस कला के कुछ मूल आधार खोज लिये गये थे, परन्तु धीरे–धीरे ग्रामीण जीवन में इसके चित्रों की माँग बढ़ जाने के कारण इस कला में यान्त्रिक पुनरावृत्ति तथा व्यावसायिकता का समावेश हो गया। आज के बंगाली पटुआ कलाकार इस कला का अर्थ थी नहीं समझते। किन्तु इसके रूपों का आधार इतना दृढ़ है कि अत्यधिक यान्त्रिक होने पर भी इसके मूल रूप पूर्णतः विलुप्त नहीं हुए हैं।

पटुआ कला में पिछले युग के मानव द्वारा समझे गये प्रकृति के सारभूत तत्व प्रकट हुए हैं अतः यह प्रकृति की यथार्थ प्रतिकृति नहीं है। यह चारों ओर के वातावरण से मनुष्य के मन में उठे संवेगों की सीधी अभिव्यक्ति है अतः इसमें वस्तुओं के केवल आवश्यक तत्वों को लेकर ही रूप रचना कर दी जाती है। संसार भर की आदिम कलाओं में यही प्रवृत्ति मिलती है पर यह उनसे इस रूप में भिन्न है कि एक तो पटुआ कला के स्त्रोत स्थानीय मिथक हैं, दूसरे पटुआ कलाकार परिष्कृत कला को भी देखता है जो शहरों में चलती रहती है। पटुआ कला मिथकों तथा विश्वासों पर जीवित रहीं है। आदिम कला में अलग–अलग आकृतियों में तो लयात्मकता है पर सम्पूर्ण संयोजनों में नहीं है। पटुआ कला के सभी रूप एक काल्पनिक अन्तर्जगत की वस्तु हैं, एक रहस्य–सूत्र से वे आपस में सम्बन्धित है। उनका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ब्रह्माण्ड के सारभूत रूपों से होता है।

पटुआ कला ने अपने मिथक–विश्वासों को सरल रूपों में प्रस्तुत किया, उन्हें कोमल अथवा जटिल नहीं होने दिया। उसके सामने परिष्कृत कला भी थी किन्तु उसने उसकी अनुकृति नहीं की।

कालीघाट के पटचित्र– कालीघाट के पटचित्रों में व्यावसायिकता के साथ–साथ शहरीपन भी आ गया है। उनके विषय तो नये हो ही गये हैं, सामग्री में भी परिवर्तन हुआ है। कालीघाट में बिकने वाले इन पट चित्रों को प्रायः दर्शनार्थी भक्तजन खरीद ले जाते हैं। ये प्रायः टाट, कपड़ा, कागज अथवा कपड़े पर चिपके कागज तथा केनवास पर बनाये जाते हैं। इनमें प्रायः धार्मिक कथाओं, देवी–देवताओं की छवियों अथवा सामाजिक विषयों का अंकन रहता है। हास्य तथा व्यंग्य के चित्र भी अंकित किये जाते हैं। खनिज रंगों से टेम्परा विधि में चित्रण करके तूलिका द्वारा बाह्य रेखांकन कर दिया जाता है। पट–चित्रण की परम्परागत विधि में टाट पर गोबर–मिट्टी का छना हुआ गाढ़ा लेप करके सुखा लिया जाता हे। फिर उसे घोट कर चिकना कर लेते हैं। तत्पश्चात उस पर खनिज रंगों से तूलिका द्वारा आकृति–रचना करते हैं। उन्नीसवीं तथा बीसवी शताब्दियों में कालीघाट में पट–चित्रों तथा कागज पर बने चित्रों का बहुत प्रचार रहा है। इनमें लोक शैली के साथ–साथ कहीं–कहीं यूरोपियन टेकनीक का भी सम्मिश्रण किया गया है। कालीघाट के अतिरिक्त इस प्रकार के चित्र मिदनापुर, हुगली, चन्द्रनगर, बर्दवान तथा मुर्शिदाबाद में भी अंकित किये जाते रहे हैं। जया अप्पासामी के अनुसार इसके प्राचीन उदाहरण 1850 ई0 से पूर्व के नहीं मिलते।

उड़ीसा के पटचित्र– सत्रहवी सदी की उड़ीसा की स्थानीय चित्रकला में मुगल, दक्षिणी तथा विजय नगर की कला–शैलियों का सम्मिश्रण हुआ। इनके प्रभाव से लोक कला का वेग, अपभ्रंश शैली की अन्तराल व्यवस्था, विजय नगर शैली का आकृति विधान, दक्षिणी शैली की आलंकारिकता तथा मुगल शैली की रेखांकन की बारीकी का सम्मिश्रण हुआ। यही शैली अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी की उड़ीसा की पट–चित्रकला में आगे विकसित हुई जिस पर कालीघाट की शैली का प्रभाव भी पड़ा। वृक्षों का लताओं के समान अंकन भी इस शैली की एक मुख्य विशेषता है। उन्नीसवीं सदी में इस पर कम्पनी शैली का प्रभाव भी पड़ने लगा। इस शैली के चित्रकार मुख्य रूप से कपड़े पर ही चित्रांकन करते रहे हैं। इस शैली के चित्र प्रायः जगन्नाथपुरी में आने वाले तीर्थयात्री एवं पर्यटक खरीद कर ले जाते हैं अतः विशाल पैमाने पर साधारण कोटि के चित्रों की लोक–शैली के समान ही रचना होती रही है। धार्मिक कथानकों के पुस्तक चित्र भी बनाये गये हैं। प्रायः राधा–कृष्ण के कथानक सम्बन्धी चित्रों की अधिकता है।

नाथद्वारा के पटचित्र– नाथद्वारा यूँ तो मेवाड़ शैली का प्रसिद्ध केन्द्र रहा है तथापि श्रीनाथ जी के दर्शनों को आने वाले तीर्थयात्रियों में प्रसाद के साथ–साथ धार्मिक दृष्टि से चित्रों की भी बड़ी माँग रहती है। इस माँग को पूरा करने के लिए सामान्य स्तर की शैली में पट–चित्र यहाँ बहुत बड़ी संख्या में बनते हैं। प्रायः भगवान श्रीकृष्ण के बाल एवं ग्वाल स्वरूप तथा गोपिकाओं और रास से सम्बन्धित घटनाओं एवं श्रीनाथजी की छवियों को ही चित्रित किया जाता हे। यहाँ बने पट–चित्र पिछवाइयों के रूप में भी प्रचलित हैं और सामान्य रूप से लटकाये जाने वाले चित्रों के रूप में भी। प्रायः टेम्परा विधि से राजस्थानी कला की परम्परा में ही चित्रण किया जाता है पर सरलीकरण इतना अधिक है कि यदि इन्हें चाहें तो लोक कला के समकक्ष रख सकते हैं। यहाँ की वर्तमान परम्परागत शैली में मेवाड़ के अतिरिक्त किशनगढ़, जयपुर तथा मुगल शैलियों का भी सम्मिश्रण हुआ है। खूबीराम, घासीराम, हीरालाल, नरोत्तम नारायण, लक्ष्मीलाल, नन्दलाल, गिरधारी लाल, भँवरलाल, नैनसुख, राजेन्द्र शर्मा, गुलाब जी मिस्त्री, घनश्याम, शंकर लाल आदि यहाँ के प्रसिद्ध चित्रकार हैं और इनमें से अनेक चित्रकारों की कृतियाँ मुद्रित तथा लोकप्रिय हुई हैं। इनका कार्य प्रायः व्यावसायिक स्तर का है। इनमें से अनेक चित्रकारों की कृतियाँ कलैण्डरों के माध्यम से घर–घर में पहुँच चुकी हैं। नाथद्वारा की शैली से मिलते–जुलते अनेक चित्र मथुरा तथा वृन्दावन के बाजारों में भी बनते और बिकते हैं। इनमें मुख्यतः जयपुर, किशनगढ़ तथा मेवाड़ की कला का प्रभाव रहता है।

तंजौर शैली के चित्र– तंजौर प्राचीन काल से ही कलाओं का समृद्ध केन्द्र रहा है। चोल राजाओं के समय यहाँ पर्याप्त उन्नति हुई थी। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी में भी यहाँ मुगल शैली के सम्मिश्रण से चली आ रही दक्षिणी शैली का ही प्रचलन था किन्तु धार्मिक तथा परम्परागत विषयों के चित्र परम्परागत शैली का ही प्रचलन था किन्तु धार्मिक तथा परम्परागत विषयों के चित्र परम्परागत शैली का आधार लेकर निर्मित किये जाते रहे। मराठाकाल में यहाँ पुस्तक–चित्रण की विधि भी विकसित हुई थी। इसमें किंचित गाढ़े लेप से आकृतियाँ बनाकर रिलीफ का हल्का प्रभाव दिया जाने लगा। रामायण, कृष्णलीला आदि विषयों का अंकन इस प्रकार के चित्रों में बहुत हुआ हे और रंगों के अतिरिक्त मूल्यवान पत्थरों तथा सुवर्ण के पत्रों को भी चिपकाया गया है। यह कला हैदराबाद, कुड्डप्पा, कुरनूल, अर्काट, मैसूर तथा तंजौर, सभी स्थानों पर किंचित स्थानीय विशेषताएँ लेकर विकसित हुई।

केदारनाथ, बद्रीनाथ, द्वारका आदि में बिकने वाले धार्मिक चित्रों तथा बंगाल, मधुबनी राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मालवा आदि की लोक शैलियाँ भी अत्यन्त जीवन्त रूप में अपने–अपने क्षेत्रों को निरन्तर प्राणान्वित करती रही है।

काँच पर चित्रण– अठारहवीं सदी उत्तरार्द्ध में पूर्वी देशों की कला में अनेक पश्चिमी प्रभाव आये। यूरोपवासी समुद्री मार्गों से खूब व्यापार कर रहे थे। डचों, पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों तथा अंग्रेज व्यापारियों ने भारतीय सागर–तटों पर अपनी बस्तियाँ
स्थापित कर ली थी। इनके लिए अनेक चित्रकार यूरोपीय काँच–चित्रण के अनुकरण पर चित्राँकन कर रहे थे। यह कार्य मुख्यतः चीनी चित्रकार कर रहे थे। भारतीय राजाओं ने भी विदेशी चित्रकारों को अपने दरबारों में स्थान दिया। टीपू सुल्तान ने भी इनसे अनेक चित्र बनवाये। सतारा, कच्छ तथा मुम्बई में भी अनेक चित्रकार थे जिनकी शैली में चीनी–यूरोपीय पद्धतियों का सम्मिश्रण था।

काँच पर चित्रण आरम्भ में दक्षिण भारत में प्रचलित हुआ था। तमिलनाडु, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश तथा महाराष्ट्र में यह माध्यम भारत के अन्य क्षेत्रों की तुलना में पहले आरम्भ हुआ था। सभी क्षेत्रों में स्थानीय शैलियों के प्रभाव से

परिवर्तन भी हुए। तंजौर में यह काष्ठ–चित्रण से प्रभावित हुआ। भीड़ युक्त सपाट संयोजन, कृत्रिम अलंकरणें की प्रचूर सजावट और प्रदर्शन, सुवर्ण का अत्यधिक प्रयोग, रंगों में छाया देने के उपरान्त भी प्रायः सपाट तथा आलंकारिक प्रभाव, रेखांकन में भारीपन आदि इन चित्रों की प्रमुख विशेषताऐंह है। मैसूर के चित्रों का रेखांकन अधिक स्पन्दनयुक्त है, अलंकरण कम है और आकृतियों में गति तथा सजीवता है। कालीघाट की काँच–चित्रण कला में मोटी सीमा रेखा, ओजपूर्ण आकृतियाँ तथा भारीपन है। पृष्ठभूमि रिक्त रहती है। सभी स्थानों पर प्रायः देवी–देवताओं, राज–दरबारों तथा गणिकाओं का अंकन इस कला में अधिक हुआ है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला का प्रभाववाद

यूरोप की आधुनिक चित्रकला का प्रथम महत्वपूर्ण आन्दोलन प्रभाववाद है। इसका मुख्य रूप से प्रचलन 1874 से 1886 तक पेरिस में रहा है और इसके प्रधान कलाकार मोने, पिस्सारो, रेनोआ, सिसले, देगा आदि रहे हैं। प्रभाववाद में प्रधानतः प्रकाश की क्रीडा को ही प्रस्तुत किया गया है अतः इन कलाकारों ने अमिश्रित रंगों का प्रयोग किया है जिससे रंगों में अधिक से अधिक प्रकाश प्रतिविम्बित हो सके। श्वेत तथा काले रंग के साथ ही इन कलाकारों ने कत्थई और भूरे रंगों का भी प्रयोग छोड़ दिया था। विषयों की दृष्टि से भी इन कलाकारों ने प्राचीन विषयों को पूर्णतः तिलाजलि दे दी थी और समकालीन जीवन की वास्तविकताओं को समझने के अभिप्राय से प्रायः प्राकृतिक दृश्यों का समय और वातावरण के अनुसार घटना स्थल पर जाकर ही चित्रण करने के अतिरिक्त स्थिर जीवन, कॉफी हाउस, वैश्याओं, आवारा व्यक्तियों, शराबियों, मध्य एवं निम्न वर्गीय व्यवसायियों एवं कारीगर कलाकारों को ही चित्रित किया।

फोटोग्राफी की प्रेरणा से प्रभाववादी चित्रकारों ने जीवन के व्यस्त क्षणों को भी चित्रित करने का प्रयत्न किया। आगे चलकर यह आन्दोलन नव प्रभाववाद में परिणत हो गया जिसमें रंगों के मिश्रण पूरी तरह छोड़ दिये गये और अमिश्रित रंगों को बिन्दुओं के रूप में ही चित्रों में लगाया जाने लगा। दिन के अलग–अलग समयों में धूप की तेजी के अनुसार एक ही वस्तु के प्रकाश तथा छाया वाले भागों के रंगों में होने वाले परिवर्तनों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया गया। विदेशी पद्धतियों का अध्ययन करने वाले भारतीय चित्रकारों ने प्रभाववादी शैली में भी चित्रांकन किया है। बंगाल के आरम्भिक कलाकारों में यामिनीराय ने अनेक दृश्य–चित्र प्रभाववादी शैली में बनाये थे।

आधुनिक भारतीय दृश्य

चित्रकारों में अधिकांश ने प्रभाववादी पद्धति से चित्रण आरम्भ किया था। भारत के सुप्रसिद्ध चित्रकार हुसैन ने भी अपने आरम्भिक काल में प्रभाववाद से मिलती–जुलती विधि से अनेक दृश्य अंकित किये थे। बम्बई के ढोंद तथा लखनऊ के रणवीर सिंह बिष्ट के प्रभाववादी पद्धति से बने जल रंग दृश्य–चित्र अद्वितीय है। अभिव्यंजनावाद यूरोप में बीसवीं शती का एक प्रमुख कला आन्दोलन ''अभिव्यजनावाद'' के रूप में 1905–06 के लगभग उदय हुआ। इसका प्रधान प्रयोक्ता जर्मन कलाकार एडवर्ड मुक था। लगभग उसी समय अभिव्यंजनावादी प्रवृत्ति फ्रांस में भी 'फविवाद' के नाम से प्रचलित हुई जिसका प्रमुख कलाकार हेनरी मातिस था। जर्मनी कलाकार विषय वस्तु पर अधिक बल देते थे जबकि फ्रेंथ कलाकार चित्र के सम्पूर्ण स्थात्मक तत्व महत्वपूर्ण मानते थे। माति ने कहा था कि अभिव्यंजना मुखाकृति से प्रकट होने पालेभाव अथवा उगपूर्ण मुद्राओं में न होकर सम्पूर्ण चित्र के पूर्ण योजन में होती है। जर्मन अभिव्यजनवादी मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण एवं परिवेश के द्वारा अभिव्यंज़ना करने के पक्षपाती थे। उन्होंने प्रकृति को पूर्णतः व्यक्तिगत ढंग से चित्रित किया और अत्यन्त सहजता तथा तात्कालिकता पर बल दिया। विरोधी रंगो राशक्त से मुक्त रेखाओं आदि का उन्होंने प्रकृति की व्यवस्था, समाज में बुराइयों तथा केविरफोटक स्वभाव इन तीनों में परस्पर संघर्ष दिखाने के उद्देश्य से पूर्ण उन्मुक्त विधि से प्रयोग किया। वे अपनी बात को तीव्रतम रूप में कहना चाहते थे अतः उन्होंने प्रकृति के आदिम रूपों को माध्यम बनाया।

भारत में रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा देशवासियों को सभी स्रोतों से प्रेरणा लेने तथा विश्व में अर्जित ज्ञान और अनुभवों द्वारा स्वय को समृद्ध बनाने का परामर्श देने के फलस्वरूप इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट द्वारा सन् 1922 में कलकत्ता में कलाकारों की एक चित्र प्रदर्शनी लगायी गयी। इसका भारतीय कलाकारों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रगतिशील विचारों वाले जो कलाकार 'केवल स्वदेशी' अथवा केवल परम्परागत भारतीय के विरोधी थे उन्होंने भी इस विदेशी कला प्रवृत्ति का स्वागत किया।

भारत में फॉय कला की प्रेरणा सर्वाधिक प्रबल रूप में शैलोज मुखर्जी की कृतियों में मिलती है। जब वे पेरिस गये थे तो हेनरी मातिस से मिले थे और उसके प्रभाव से उनक चित्रों में सपाट धरातल, लम्बी आकृतियाँ, व्यंजनापूर्ण रेखाओं तथा रगों का ताजगीपूर्ण प्रयोग हुआ। अमृता शेरगिल की कला में पर्याप्त अभिव्यंजना है किन्तु उनकी शैली पर अजन्ता का भी प्रभाव है। पश्चिम भारत के अन्य कलाकारों को जर्मन अभिव्यंजनाबाद का परिचय बम्बई के माध्यम से मिला। बम्बई में कुछ विदेशी अभियानावादी कलाकार सक्रिय थे जिनमें श्लेसिंगर, लीडन बन्धु (रुडीवान लीडन तथा लौलीदान लीडन) तथा वाल्टर लॅगहेमर प्रमुख थे। श्लेसिंगर कला–संरक्षक के समान आदरणीय समझे जाते थे। उनके द्वारा लिखी गयी कला सम्बन्धी पुस्तकों ने उस समय यूरोप की अनेक नई बातों से भारत के कला जगत को परिचित कराया था। लीडन टाइमा आफ इण्डिया में थे और समय–समय पर कला विषयक लेख भी लिखते रहते थे। लगहेमर इलस्ट्रेटेड वीकली में कला–निर्देशक थे और उनके घर कलाकारों का जमघट लगा रहता था। अनेक कलाकरों ने उनसे कला का मर्म सीखा था और उन्हें गुरु मानते थे। इन विदेशी कलाकारों ने भारत में अभिव्यंजनावाद के प्रचार का प्रयत्न किया। भारतीय कलाकारों ने अभिव्यंजना की दृष्टि से रंगों के प्रयोग को महत्वपूर्ण माना और तूलिकाघातों

द्वारा भी चित्र में एक प्रकार की धरातलीय संगति उत्पन्न की जाने लगी। इसकी भी अभिव्यंजनात्मक दृष्टि से रचना की जान लगी। चालीस और पचास के दशकों (1941–1960) में यह प्रभाव विशेष रहा। 1940 के लगभग भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष को दबाने में अंग्रेजों ने पाशविक शक्ति का नृशंसता से प्रयोग करना आरम्भ कर दिया, बंगाल में भयंकर दुनिल पड़ा, देश के विभाजन, साम्प्रदायिक दंगों और कई करोड शरणार्थियों के आगमन ने लोगों का हृदय हिला दिया। इन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों ने कलाकारों को भावों का प्यार रोकने में असमर्थ कर दिया। प्रतीकवाद और रहस्यवाद के छलावे को छोड़कर तथा सहज मानवीय सहानुभूति से प्रेरित होकर भारत के अनेक कलाकारों ने समाज की समस्याओं और इन नय विकृतियों को सशक्त रूपों में चित्रित किया फुटपाथ पर जीवन बिताने वाले दीन हीनों, मानवीय पीड़ा और निराशा, राक्षसी क्रूरता छटपटाहट तथा मानव चरित्र की उद्दाम प्रवृत्तियों आदि को व्यक्त करने वाले कलाकारों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर (डिंग), रामकिंकर (मातृत्व), के०सी०एस० पनिक्कर (मेवमेण्ट ड्वेलर्स), रामकुमार (टाउन), सतीश गुजराल (डेसोलेशन), फ्रांसिस न्यूटन सूजा (बार्सीलोना), अविनाशचन्द्र (जंगल) आदि प्रमुख हैं जिन्होंने गहरे–गहरे रंगोका ही प्रयोग नहीं किया है बल्कि तनावपूर्ण रेखा आदि के द्वारा दवी हुई मन की शक्तियों को भी बन्धन–मुक्त किया है । इन चित्रों में गर्भवती महिलाओं की मार्मिक वेदना और यातना, आधुनिक शहरों के विषाक्त होते हुए बातावरण, गरीबों के अव्यवस्थित जीवन तथा सामाजिक जीवन के घृणित पक्षों आदि को दर्शकों को झकझोर देने वाले रूपों में प्रस्तुत किया गया है। चित्रों में रेखा, रंग, धरातलीय प्रभाव आदि की विकृतियों तथा चित्रों के सम्पूर्ण व्यंजनात्मक संयोजन की दृष्टि से नन्दलाल गगु (माँ और शिशु), शैलोज मुखर्जी (वन में शृंगार), अकबर पदमसी (नारंगी अनावृता), नारायण श्रीधर बेन्द्रे (पूरक रंगों में भेस तथा सारस), तथा गुलाम रसूल सन्तोष (लेटी हुई अनावृता) आदि भी सुन्दर उदाहरण है। विषय–वस्तु की सीमा में रहकर भारतीयता को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न के०के० हैय्यार (महाबलेश्वर, कविता का जन्म, बाजार जाते ग्रामीण एवं गुर्गों की लड़ाई) तथा मकबूल फिदा हुसैन (सूर्योदय एवं विश्वामित्र तथा रामायण और महाभारत चित्र श्रृंखलाएँ) आदि ने किया है। इनकी शैली में भारतीय परम्परागत कलाओं तथा भारतीय साहित्य आदि का प्रभाव स्पष्ट है।

कुछ अन्य भारतीय चित्रकारों ने भारतीय अथवा ईसाई धार्मिक, पौराणिक अथवा साहित्यिक विषयों का चित्रण अभिव्यंजनावादी विधि से अथवा अभिव्यंजनात्मकता के किंचित् प्रभाव के साथ किया है। यामिनीराय तथा लक्ष्मण पे में रेखात्मक तथा आलंकारिक अभिव्यजना है। के०एस० कुलकर्णी, दिनकर कौशिक, भवेश सान्याल तथा गोपाल घोष आदि में अभिव्यंजनावाद तथा शास्त्रीयतावाद के समन्वय की प्रवृत्ति है। सतीश गुजराल की कला में मेक्सिकन पद्धति का अभिव्यंजनावाद है जो पीड़ा, भयानकता, वीभत्सता तथा आतक आदि की ध्वनियों से तरंगित रहता है। रामकुमार, कृष्ण खन्ना, ए० रामचन्द्रन तथा तैयब मेहता आदि की कला में रंगों तथा रेखाओ के सन्तुलित रूप में अभिव्यंजनावाद का प्रयोग हुआ है। इन दोनों में रंग प्रतीक के स्तर पर भी सक्रिय है। जेराम पटेल में दिवास्वप्न के समान अनुभूति होती है। कृष्ण रेड्डी, कॅवल कृष्ण, देवयानी कृष्ण, जगमोहन चोपडा, मनु पारेन, जतीनदास, स्वामीनाथन तथा गायतोंडे भी सशक्त अभिव्यंजनाओं में समर्थ हैं। मोहन सामन्त ने भी अभिव्यंजनावादी पद्धति में अनेक चित्र बनाये हैं। विवान सुन्दरम, सुधीर पटवर्धन, नलिनी मलानी आदि आज की परिस्थितियों को रंगों तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों द्वारा व्यक्त कर रहे हैं। गणेश पाइन ने लोककला तथा बंगला साहित्य से प्रेरणा ली है। गुलाम मुहम्मद शेख सामाजिक यथार्थवाद से जुड़ गये है। रामेश्वर बूटा सामाजिक व्यग्य के लिए हिप्पी सस्कृति आदि के विषय लेते है। इस प्रकार भारतीय अभिव्यजनावाद का मुख्य दौर गुजर जाने के बाद भी इसमें अनेक कलाकार प्रभावशाली कार्य कर रहे हैं।

उपसंहार

कला सृष्टि का बोधगम्य संसार मानव मस्तिष्क की सृजन प्रक्रिया से ही बनता है। फिर इन अनुभूत गुणों के आधार पर हम उन्हें विभिन्न अर्थ प्रदान करते हैं। इस तरह प्रकृति के विभिन्न आकार–निराकार और अर्थ के संयोग से अपने चारों ओर वस्तुओं और व्यक्तियों का संसार निर्मित करते हैं, लेकिन काल हमेशा परिवर्तनशील है। उसी तरह विकासमान कला के मापदण्ड बड़ी तेजी से बदलते जा रहे हैं। वर्तमान सदी में समकालीन कला अनेक नये रूपों में विकसित होती रही है और कला का यह प्रयास नूतन युग का सूचक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारतीय चित्रकला– वाचस्पति गैरोला– इलाहाबाद–1963
- प्रगैतिहासिक भारतीय कला– डा0 जगदीश गुप्त– दिल्ली–1967
- भारतीय कला– वासुदेव शरण अग्रवाल– बनारस–1966
- आधुनिक भारतीय चित्रकला– डा0 गिर्राज किशोर अग्रवाल–अलीगढ–1995
- भारतीय चित्रकला का इतिहास– अविनाश बहादुर वर्मा– बरेली–1992
- कला और आधुनिक प्रवृष्टियाँ– रामचन्द्र शुक्ल–लखनऊ–1974
- प्राचीन भारतीय कला– गयाचरण त्रिपाठी–कानपुर–1971
- मुगल चित्रशैली– डा0 सोम प्रकाश वर्मा–जयप ुर–1998
- राजूपत पेन्टिग्स– आनन्द क ुमार स्वामी–दिल्ली–1976
- चित्रेगीत–गोविन्द–क्षितीन्द्र नाथ मज ूमदार–इलाहाबाद–1952
- पहाड़ी चित्रकला– किशोरी लाल व ैध–दिल्ली

- कला एक मीमीसां– डश्रा0 चिरंजी लाल झा– गाजियाबाद–1960
- भारतीय चित्रकला पद्धति– शैलेन्द्र नाथ डे– इलाहाबाद– 1940
- इण्डियन पेन्टिग्स– पर्सी ब्राउन– कलकत्ता– 1947

———